International Journal of Research
Special Issue for Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

# बच्चों और स्त्रियों के मानवाधिकार : सामाजिक दृष्टिकोण

**Sumitra**
Assistant Professor
Department of Sociology
C.R. College of Law, Rohtak (HR.)

**शोध– आलेख सारः–**

मानवाधिकार 'वे अधिकार और स्वतंत्रता हैं, जिन पर सभी मनुष्यों का हक है।' इस विचारधारा के समर्थक इस तथ्य पर बल देते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति मनुष्यमात्र होने से ही कुछ अधिकारों का हकदार हो जाता है। इस प्रकार मानवाधिकारों की परिकल्पना सार्वभौमिक एवं उदारवादी दृष्टि से की जाती है। ऐसे अधिकारों का अस्तित्व वास्तविक मानवीय नैतिकता के रूप में अन्य मूल्यों के साथ बना रह सकता है, जो तर्कसंगत और वैधानिक अधिकारों की दृष्टि से राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय कानून के स्तर पर मान्य हों। फिर भी इस बात पर सहमति नहीं बन सकी है कि इन उल्लिखित अर्थों में से कौन–सा अर्थ विशेष रूप से स्वीकार्य हो। मानवाधिकारों की अमूर्त अवधारणा विचारोत्तेजक दार्शनिक विचार–विमर्श एवं आलोचना का विषय बन गई है।

**मूल शब्दः–** मानवाधिकार, मानवीय नैतिकता, दार्शनिक विचार–विमर्श।

**भूमिकाः–**

मानवाधिकारों की आधुनिक अवधारणा दूसरे विश्व युद्ध के विनाशकारी परिणामस्वरूप जन्म ले सकी। संयुक्त–राष्ट्र–महासभा ने सन् 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की। यद्यपि 'मानवाधिकार' अपेक्षाकृत नई शब्दावली है, किंतु इस आधुनिक अवधारणा के मूल में ग्रीस के नगर–राज्य और रोम के कानून हैं। मानवाधिकारों की चर्चा के अग्रदूत रहे हैं जान ऑक और इमैन्युअल कान्ट के प्राकृतिक अधिकारों के प्रबुद्ध विचार और संयुक्त राज्य के मानवाधिकार विधेयक तथा फ्रांस में मनुष्य और

नागरिकों के अधिकारों की घोषणा। मानवाधिकार बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक मनुष्य के जन्मजात अधिकार हैं – वह चाहे जिस देश, निवास–स्थान का हो और चाहे स्त्री हो या पुरुष। ये सभी अध्किार एक–दूसरे से संबद्ध हैं, एक–दूसरे पर निर्भर और अविभाज्य हैं।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिकता का सिद्धांत अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानूनों की आधारशिला है। इस सिद्धांत को अनेक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों, घोषणाओं और प्रस्तावों में दोहराया गया है। उदाहरणार्थ, सन् 1994 में आयोजित मानवाधिकारों से संबद्ध वियना के विश्व–सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया कि सभी मानवाधिकारों और आधारभूत स्वतंत्रता को प्रोत्साहित और सुरक्षा प्रदान करने का दायित्व राज्यों का है, चाहे वे किसी भी राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रणाली से संबद्ध हों।

महिलाओं ने सन् 1973 में मैक्सिकों शहर में अपने ब्रा जला दिए और अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए कोपेनहेगेन में उत्कट संघर्ष किया। नैरोबी में सन् 1985 में महिलाओं ने अंततः यह निर्णय किया कि पुरुषों द्वारा शासित समाज से वे अपनी मांगों का विस्तार करेंगी। तीसरी दुनिया के अधिकतर देशों में सामाजिक भेदभाव और लिंग–भेद को लेकर उनके साथ जो पक्षपात होता रहा है, उसके कारण वे दूसरी श्रेणी की नागरिक बन गई हैं। जैविक दृष्टि से पुरुषों से अधिक शक्तिशाली होने के बावजूद लड़कों की तुलना में 3 लाख से अधिक लड़कियाँ हर वर्ष भारत में मर जाती हैं। प्रत्येक 6 महिलाओं में एक की मृत्यु लिंग–भेद पर आधारित भेदभाव के कारण होती है। एन्.सी.ई.आर.टी. के एक अध्ययन के अनुसार, भारत में जन्मी 12 मिलियन लड़कियों में से प्रतिवर्ष अपना 15वाँ जन्मदिन नहीं मना पाती हैं।

स्त्री–पुरुष का अनुपात स्त्रियों की वास्तविकता का एक शक्तिशाली सूचक है। भारत उन कुछ देशों में से है, जहाँ स्त्री–पुरुष का अनुपात महिलाओं के विरुद्ध है। महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा अधिकतर देशों में अधिक संख्या में हैं। जैविक रूप से अधिक शक्तिशाली होने के कारण जैविक रूप से 100 लड़कियाँ जन्म लेती हैं तो लड़के 102 से

107 तक। पुरुषों की मृत्यु–दर अधिक होने के कारण यह संख्या बाद में कुछ कम हो जाती है। अध्ययन में बताया गया है कि भारत में वर्तमान शताब्दी के आरम्भ से ही स्त्री–पुरुष का अनुपात केवल कम ही नहीं हुआ है, बल्कि काफी गिर गया है। सन् 1991 की जनगणना में 929:1000 लिंग–अनुपात दर्ज हुआ, जो सन् 1901 के बाद न्यूनतम अनुपात है।

## महिलाओं के विरुद्ध अपराधः–

महिलाओं के विरुद्ध अपराध उनकी समस्याओं की और बढ़ाते हैं। देश–भर में 11,200 से अधिक बलात्कार के मामले 1994 में दर्ज किए गए। लेकिन यह अर्द्धसत्य है, क्योंकि सामाजिक बदनामी के भय से ऐसे अधिकतर मामलों की रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई जाती है। लगभग आधे मामलों की रिपोर्ट (लगभग 5,000) दो बड़े हिंदी भाषी राज्यों उत्तर–प्रदेश और मध्य–प्रदेश में दर्ज की गई है, जबकि राजस्थान, महाराष्ट्र, बिहार और आंध्र–प्रदेश में इस वर्ष के दौरान कुल 4,000 मामले दर्ज किए गए। देश की राजधानी में जो तंदूर–हत्याकांड से कुख्यात हो चुकी है, बलात्कार के कुल 261 मामले दर्ज किए गए, जबकि सभी संघशासित प्रदेशों में कुल 281 बलात्कार की घटनाओं की रिपोर्ट हुई। दिल्ली में महिलाओं से छेड़छाड़ के 22,000 मामले 1994 के दौरान दर्ज करवाए गए। लेकिन यहाँ भी ये आँकड़े सही तस्वीर नहीं प्रस्तुत करते, क्योंकि ऐसे अधिकतर मामलों की रिपोर्ट या तो नहीं लिखवाई जाती है या लिखी नहीं जाती है। देश–भर में दहेज–हत्या के 4,850 मामले 1994 में दर्ज किए गए, जिनमें से उत्तर–प्रदेश में ही 2,000 ऐसे मामले दर्ज किए गए। 1994 से ऐसे मामलों में वृद्धि हुई है, जिससे संबद्ध आँकड़े उपलब्ध हैं।

महिलाओं के सभी अधिकार मानवाधिकार हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उन्हें स्वामित्व का अधिकार देना है। महिलाओं का संपत्ति पर अधिकार अत्यन्त आवश्यक है,

वस्तुतः महिलाएँ श्रम–शक्ति की जन्मदात्री हैं। वे घर बनाने में बहुत परिश्रम करती हैं। परिवार और समाज के निर्माण में उनका जो योगदान है, उसके अनुरूप ही संपत्ति में उनका हिस्सा भी होना चाहिए। उन्हें संपत्ति पर स्वामित्व का अधिकार मिलने के साथ ही मानवोचित सम्मान मिल सकेगा। इसे कानूनी और सामाजिक मान्यता मिलनी चाहिए।

**असहाय बच्चेः–**

छह वर्ष तक के बच्चे भारत की कुल जनसंख्या के लगभग 20 प्रतिशत हैं, जो आर्थिक प्रगति के इस युग में भी कुपोषित, उपेक्षित और दयनीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। 2005–06 में किए गए तीसरे राष्ट्रीय परिवार–स्वास्थ्य–सर्वेक्षण से उपलब्ध आँकड़ें बताते हैं कि छह वर्ष तक के सभी बच्चों में 42.4 प्रतिशत कुपोषण से ग्रस्त हैं, अपनी आयु के अनुसार उनका वजन कम पाया गया – जो 1998–99 के आँकड़े से मात्र 2.1 प्रतिशत कम है। अविकसित बच्चों का प्रतिशत 44 प्रतिशत से गिरकर 37 प्रतिशत हुआ है, लेकिन वर्तमान दर पर भारतीय बच्चों को अपनी आयु के अनुसार स्वाभाविक कद प्राप्त करने में दो दशक से अधिक लगेंगे। छह वर्ष से कम आयु के आधे बच्चों को टीके नहीं लगाए गए हैं और 77 प्रतिशत बच्चों को एनीमिया (रक्त–अल्पता) है। तीन दशक पहले शुरू किया गया समेकित बाल–विकास–सेवा–कार्यक्रम (आई.सी.डी.एस.) महत्त्वपूर्ण सरकारी कार्यक्रम है। लेकिन छह वर्ष से कम आयु के बच्चों पर हाल ही में जारी 'फोकस' सर्वेक्षण से और 'आँगनवाड़ी' केन्द्रों के कार्यकलाप से पता चलता है कि इन कार्यक्रमों से बच्चों को अपेक्षित प्रकार का लाभ नहीं मिल रहा है। सरकारी प्रयासों के बावजूद भारतीय बच्चे उपेक्षित और दयनीय स्थिति में फँसे हुए हैं।

मानवाधिकार निगरानी रिपोर्ट के अनुसार, सड़क पर जीवन बिताने वाले बच्चों की संख्या 115 मिलियन है। यदि यह लगभग सच है तो यह संख्या कई यूरोपीय देशों की आबादी के बराबर है। मानवीय विकास रिपोर्ट 2006 के अनुसार, 10 में से चार स्कूली बच्चे ही दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई पूरी कर पाते हैं तथा 100 में से लगभग 6 बच्चे एक

वर्ष से अधिक जीवित नहीं रह पाते हैं। यदि इन्हें यूरोप में बसा दिया जाता तो उन्हें आपातस्थिति घोषित करनी पड़ती। एक ओर हम 9 प्रतिशत विकास–दर के आधार पर सुपरपॉवर बनने की बात सोच रहे हैं तो दूसरी ओर यह हास्यास्पद स्थिति है। वे कल्याणकारी कार्य कहाँ हैं जिनके अभाव में कोई नागरिक समाज अपने को सभ्य नहीं कह सकता। महाराष्ट्र–सरकार को अपनी बाल–विकास–नीति की मुख्य सिफारिशों को अभी क्रियान्वित करना है। राज्य महिला एवं बाल–विकास–विभाग नियोजित एवं संरचनायुक्त नीति पर बल देता है। अधिकारी यह स्वीकार करते हैं कि धनराशि की उपलब्धता कोई समस्या नहीं है, वास्तव में बहुत–सी निधि–राशि व्यर्थ जाती है।

## मानवाधिकारों के प्रति सुलभ का दृष्टिकोण:–

महिला–सशक्तिकरण की समस्या के प्रति सुलभ का दृष्टिकोण इस विश्वास पर आधारित है कि सामाजिक परिवर्तन शिक्षा, सामाजिक उत्थान के लिए अभियान चलाने और लोगों को परिवर्तन के लिए प्रोत्साहित करने से आता है। महिला सशक्तिकरण, छुआछूत मिटाने एवं बच्चों को शिक्षित करने से संबद्ध अनेक कानून हैं, लेकिन वे केवल अधिकतर कागज पर ही हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि सबसे बड़ी संख्या में पूर्णतः निर्धन लोग (संयुक्त–राष्ट्र की स्थापना के अनुसार, प्रतिदिन एक डॉलर पर जीवन निर्वाह करने वाले लोग) सर्वाधिक निरक्षर (भारत की लगभग 90 प्रतिशत महिलाएँ पढ़ और लिख नहीं सकतीं) और सर्वाधिक कुपोषित बच्चे (सहारा क्षेत्र से भी अधिक दयनीय स्थिति में) हमारे यहाँ ही हैं। इसे समझने के लिए आँकड़ों की आवश्यकता नहीं है। यू.एन.डी.पी. की सामाजिक स्थिति पर जो रिपोर्ट है, उसके अकाट्य आँकड़ों से ये तथ्य स्पष्ट हैं। मैंने सरकारी और गैर–सरकारी अभिकरणों के साथ कार्य करते हुए सामाजिक परियोजनाओं को हाथ में लिया है, ताकि महिलाओं, विशेष रूप से सर्वाधिक निर्धन, अपमानित एवं भेदभाव से ग्रस्त हाथ से मैला ढोने वाली महिलाओं की सहायता की जा सके। अखिल भारतीय स्तर पर उनकी शिक्षा, प्रशिक्षण और सामाजिक स्थिति बेहतर करने के लिए योजनाएँ बनाई गई हैं, जिनकी यहाँ चर्चा करना समीचीन नहीं है (कृपया 'सुलभ

इंटरनेशनल सोशल सर्विस ऑर्गनाइजेशन' / 'सुलभ इंटरनेशनल म्यूजियम ऑफ ट्वॉलेट्स' नामक वेबसाइट पर क्लिक करके देखें)। यद्यपि कुछ प्रयासों की चर्चा सुलभ–स्वच्छता और समाज–सुधार–आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में की गई है।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के प्रथम दो अनुच्छेद यह स्पष्ट करते हैं कि स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व मानवाधिकार के आधार हैं। 'सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र और समान होते हैं' (अनुच्छेद 1) और 'प्रत्येक व्यक्ति वर्ग, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य विचार, राष्ट्रीय या सामाजिक मूल या जन्म के आधार पर बगैर भेदभाव के सभी अधिकारों और स्वतंत्रता का अधिकारी है' (अनुच्छेद 2)। यह स्पष्ट है कि जाति–व्यवस्था इस घोषणा के आधार पर विसंगतिपूर्ण है, क्योंकि यह जन्म के आधार पर विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न सामाजिक स्तर प्रदान करती है। यह प्रणाली लोगों के कुछ वर्गों को मंदिर में प्रवेश करने, संस्कृत पढ़ने, पुजारी बनने के लिए धार्मिक पुस्तकें पढ़ने से रोकती है। यह अनुच्छेद 18 के विरुद्ध है, 'प्रत्येक व्यक्ति को विचार की स्वतंत्रता का अधिकार है' आदि। दलित गाँवों की बाहरी सीमा पर रहने के लिए विवश किए जाते हैं, जो अनुच्छेद 13(1) का उल्लंघन है।

विकासशील देशों में भी सशक्तिकरण के कुछ अपवाद उदाहरण हैं। इंदिरा गाँधी भारत और बेनजीर भुट्टो पाकिस्तान की प्रधानमंत्री थीं। लेकिन स्त्रियों की स्थिति में कोई अंतर नहीं आया। कुछेक वर्गों को, विशेष रूप से समाज के उच्च वर्ग की महिलाओं को छोड़कर, अधिकतर महिलाएँ बिना किसी अधिकार के अपना जीवन व्यतीत कर रही है। पाकिस्तान में विशेषरूप से उनकी स्थिति और भी खराब है।

एक पीढ़ी पहले तक अधिकतर महिलाएँ नौकर आदि के छोटे–मोटे कार्य ही करती थीं। उनके जीवन का उद्देश्य विवाह और बच्चों तक ही सीमित था। विवाह के बाद उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ती थी। आज वे उन संगठनों में कार्य कर रही है, जो उन्हें दूसरी श्रेणी का नागरिक समझते थे। लाखों महिलाओं को अपने जीवन का निर्णय स्वयं करने का

अवसर दिया गया है और लाखों लोगों की प्रतिभा को और अधिक उत्पादक कार्यों में लगाने का अवसर मिला है। अरब देशों, जापान तथा कुछ दक्षिणी यूरोप के देश इसका विरोध कर रहे हैं, वे अपनी व्यर्थ गई प्रतिभाओं और कुंठाग्रस्त नागरिकों के रूप में बहुत बड़ी कीमत चुकाएँगे।

**सन्दर्भ–**

1. ए.एल.कर्टिस, **क्रिमिनल वॉयलेंस**, लग्जीनटन बुक्स, केन्टुकी, 1974.
2. राम आहूजा, **क्राईम अंगेस्ट वुमेन**, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1987.
3. जी.एल.शर्मा , **समाजशास्त्र विश्वकोष**, यूनिवर्सिटी बुक हाऊस, जयपुर, 2008.
4. राधा कुमार, **स्त्री संघर्ष का इतिहास**, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.
5. राम आहूजा, **सामाजिक समस्याएं,** रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2011.
6. माला दीक्षित, ''कानून असरदार, व्यवस्था बेकार, **दैनिक जागरण**, पानीपत, 30 दिसम्बर, 2012.
7. योगेश चन्द्र शर्मा एवं गरिमा शर्मा, ''महिला पुलिस एवं मानवाधिकार'', **पैनासीआ इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल,** वॉल्यूम–1 (1), जुलाई–सितम्बर, 2013.